



ISSN Print: 2394-7500  
ISSN Online: 2394-5869  
Impact Factor: 5.2  
IJAR 2017; 3(5): 903-906  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
Received: 06-03-2017  
Accepted: 04-04-2017

**डॉ. सर्वजीत दुबे**

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत,  
अकादमिक प्रभारी, गोविंद  
गुरु जनजातीय  
विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा,  
राजस्थान, भारत

**Corresponding Author:**

**डॉ. सर्वजीत दुबे**

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत,  
अकादमिक प्रभारी, गोविंद  
गुरु जनजातीय  
विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा,  
राजस्थान, भारत

## संस्कृत वांगमय में पर्यावरण चेतना

**डॉ. सर्वजीत दुबे**

**सारांश**

संस्कृत वांगमय में पर्यावरण शब्द नहीं है किंतु प्रकृति के विभिन्न रूपों के प्रति ऋषि चेतना अत्यंत आदर के साथ भरी हुई थी। विभिन्न देवों और देवियों के रूप में प्रकृति की उपासना जिस रूप में प्राचीन संस्कृत के ग्रंथों में मिलती है, उससे प्रकृति के साथ उनके गहरे तादात्म्य और संवेदना का पता चलता है। अतः पर्यावरण के प्रदूषण का कोई सवाल ही नहीं उठता था। औद्योगीकरण के कारण और प्रकृति के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण अपनाए जाने के कारण आज ऐसा लगता है कि प्रकृति मनुष्य से बदला ले रही हैं। यदि प्रकृति के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण सम्यक् और संवेदनशील नहीं हो तो कोई भी सभ्यता और संस्कृति सुविधापूर्ण तो हो सकती है किंतु सुखी नहीं।

**कूटशब्द:** बाह्यप्रकृति, अंतरूपप्रकृति, शांति, औषधि, वनस्पति, शिव संकल्प।

**प्रस्तावना**

पर्यावरण से ज्यादा चर्चित शब्द आज ढूंढना बहुत मुश्किल है किंतु संस्कृत के शब्दकोश में यह कहीं नहीं पाया जाता है। क्या पर्यावरण के प्रति हमारी संस्कृत-चेतना अनभिज्ञ थी? नहीं, ऐसी बात नहीं है। प्राचीन काल में मनुष्य और प्रकृति के बीच जो अद्भुत सामंजस्य था, उसी का नाम आज पर्यावरण है। पर्यावरण के प्रति पूर्णरूपेण सजग और सचेत संस्कृत के मनीषियों को कभी “पर्यावरण” और “प्रदूषण” जैसे शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं अनुभव हुई। जिस प्रकार से माता-पिता का बालक के प्रति स्वाभाविक स्नेह और प्रेम होता है, उसी प्रकार से प्रकृति के साथ मनुष्य का उस समय स्वाभाविक स्नेह और प्रेम था; अतः पर्यावरण शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं महसूस हुई होगी। आधुनिक युग में औद्योगीकरण, यंत्रीकरण और जनसंख्या वृद्धि के कारण पर्यावरण प्रदूषण की विभीषिका इतनी बढ़ गई कि पर्यावरण व प्रदूषण शब्द सबसे ज्यादा चर्चित हो गए।

“पर्यावरण” (ecology) शब्द जर्मन “ackologie” से निष्पन्न है जिसका प्रयोग जर्मन विद्वान Ernst Haeckel द्वारा 1990 सदी में किया गया। जर्मन “aekologie” पद यवन “oikos” पद से व्युत्पन्न हुआ है। रोचक बात यह है कि यवन शब्द “oikos” संस्कृत भाषा के “ओक” शब्द से गृहीत है। पर्यावरणम् परि+आ+वृ+ल्युट् से बना है जिसका अर्थ है कि चारों ओर जो भी चेतन और अचेतन हमें घेरे हुए हैं, वह सब कुछ पर्यावरण के अंतर्गत आता है। अर्थात् पेड़-पौधे, पशु-पंक्षी, नदी-निर्झर, तपोवन-आश्रम ही नहीं बल्कि जल, पृथ्वी आकाश, वायु, अग्नि सभी पर्यावरण के हिस्से हैं। सूत्र रूप में कहा जाए तो प्रकृति ही पर्यावरण है।

आज की जो प्रमुख समस्याएं हैं, उनमें सबसे पहले हमारा ध्यान प्रकृति के बिगड़ते संतुलन की ओर बरबस चला जाता है। हवा प्रदूषित हो चुकी है, जल गंदा हो चुका है, पृथ्वी हिलती रहती है, आकाश आग बरसा रहा है, कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि से जीवन खतरे में है; ऐसे में कोई जीए तो कैसे जीए? प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में मनुष्य ने नैसर्गिक व्यवस्था में बाधा डाली है। इससे अनेक सभ्यताएं मेसोपोटामिया, मिस्र, बेबीलोन, असीरिया, सिंधु घाटी आदि नष्ट हुई हैं। सभ्यताएं भले ही नष्ट हो गई हों, परंतु अपनी पुनर्नवीनीकरण शक्ति के कारण प्रकृति सदैव बनी रही। किंतु यांत्रिक और औद्योगिक सभ्यता ने प्रकृति को आज इस हद तक नुकसान पहुंचा दिया है कि “पारिस्थितिक संकट” को अंग्रेजी में “इकोसाइड” नाम दिया गया है जो “सुसाइड” से ध्वनिसाम्य रखता है।

पहले प्रकृति के विभिन्न तत्वों में संतुलन था। धरती वनस्पतियों से पूरी तरह ढक न जाए इसलिए घास खाने वाले जानवर पर्याप्त संख्या में थे और इन जानवरों की संख्या अधिक न हो जाए इसलिए हिंसक जानवर भी थे। इन तीनों का अनुपात संतुलित और नियंत्रित था। जनसंख्या का भी विस्फोट नहीं हुआ था। इसलिए धरती शस्य-श्यामला और पर्याप्त फल-फूल आदि से परिपूर्ण थी। पर आज औद्योगिक विकास, वैज्ञानिक आविष्कारों तथा बढ़ती हुई जनसंख्या ने प्रकृति के संतुलन को पूर्णतया नष्ट कर दिया है। बढ़ती हुई आबादी को खिलाने के लिए उसी मात्रा में अन्न, सब्जी, फल आदि चाहिए। रहने के लिए घर, पहनने के लिए कपड़े तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विविध प्रकार की सामग्री चाहिए। इस पर से भौतिकतावाद और बाजारवाद ने अनियंत्रित इच्छाओं को

उत्पन्न करके प्रकृति के दोहन की सारी सीमाएं पार कर दी है।

विज्ञान द्वारा प्रदत्त असीम शक्ति ने मनुष्य को इतना मदांध कर दिया है कि वह सोचने लगा है कि वह प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेगा। दरअसल विज्ञान पहले प्रकृति को समझने (Understanding of nature) का प्रयास था, फिर विज्ञान ने प्रकृति को नियंत्रित (Control of nature) करने का प्रयास शुरू किया। इस द्वितीय प्रयास से प्रकृति के साथ मैत्री थोड़ी भंग हुई किंतु विज्ञान के तीसरे कदम प्रकृति पर विजय (Conquest of nature) ने पूर्णतः मानव और प्रकृति के संबंधों को शत्रुतापूर्ण बना दिया। बर्टेंड रसेल की एक पुस्तक का नाम है “प्रकृति पर विजय” (Conquest of nature). इस सोच का परिणाम यह हुआ की खाड़ी युद्ध के प्रभाव से श्रीनगर में सफेद बर्फ काली होकर गिरने लगी। ओजोन परत में छिद्र हो जाने से वातावरण का औसत ताप 1.5 डिग्री सेल्सियस से 4.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाने की आशंका वैज्ञानिक जता रहे हैं। ध्रुवों की जमी बर्फ पिघलकर जल प्रलय का दृश्य बना रही है। कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ ने जनजीवन नष्ट कर दिया है। ऋतु चक्र बहुत कुछ बदल गया है और अनिश्चित हो गया है।

हवा, पानी, आकाश, धरती इत्यादि प्रकृति के विभिन्न तत्वों को आज की जीवनशैली ने अपना शत्रु बना लिया है। प्रकृति के इन तत्वों के संरक्षण के लिए संस्कृत भाषा के साहित्य में प्रारंभ से सोच और प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में हम देखते हैं कि वैदिक ऋषि प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को विभिन्न देवी-देवताओं के नामों से संबोधित कर सुंदर स्तुतियों से उनकी उपासना करते हैं।

स्वस्थ जीवन प्राप्त करने के लिए वैदिक ऋषियों ने पर्वतों का सामीप्य तथा नदियों के संगम को चुना, वहां अध्ययन करना और काव्य सृजन करना फलदायक होता है-

उपगह्वरे गिरीणां संगमे च नदिनाम  
धियो विप्रो अजायत।।<sup>11</sup> (यजुर्वेद 26.15)

वैदिक काल में व्यक्ति का प्रकृति के साथ एक भावनात्मक एवं रागात्मक संबंध इसी सामीप्य के कारण उत्पन्न हुआ, यही कारण है कि वैदिक ऋषि संपूर्ण पृथ्वी को अपनी माता कह सके -

माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः।<sup>12</sup> (अथर्ववेद 12.1.12)

इसी राग के कारण “द्यौ” बनता है पिता- “द्यौषिता” [3]  
(अथर्ववेद 2.28.4)  
पृथ्वी और द्यौ के मध्य प्रकृति की विचित्र लीलाएं जीवन को समृद्ध बनाती हैं।  
अंधकार को दूर करने वाले सूर्य की भी विभिन्न रूपों में वैदिक ऋषियों ने स्तुति की हैं-  
पुरस्तात सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा

अदृष्टान्त्सर्वान्जम्यन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः।<sup>[4]</sup> (ऋ.1.191.82)

अग्नि स्वयं ही सबको पवित्र करने वाली है, इसलिए ऋग्वेद का प्रारंभिक मंत्र अग्नि को ही समर्पित है -

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्  
होतारं रत्नधातमम्॥ <sup>[5]</sup> (ऋ.1.1.6)

वैदिक साहित्य में जल ही जीवन है ऐसा माना गया है, वैदिक संध्या में सर्वप्रथम जल का आचमन तथा विविध अंगों का प्रोक्षण किया जाता है। जल प्रदूषित न हो, इसलिए तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि जल में मल-मूत्र त्याग नहीं करने चाहिए-

‘नाप्सु मूत्रपूरिषं कुर्यात्’<sup>[6]</sup> (तै.आ.26.7)

अथर्ववेद में जल को अमृत एवं औषधि के गुणों से युक्त बताया गया है-

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।<sup>[7]</sup> (अथर्व.1.4.4)

जल सब रोगों से मुक्त करता है-

“आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुन्वन्तु क्षेत्रियात्”<sup>[8]</sup>  
(अथर्ववेद 111.7.5)

इसलिए वैदिक ऋषि प्रार्थना करता है कि जल सब के लिए कल्याणकारी हो -

शन्नोदेवीरमिष्टय आपो भवंतु पीतये  
शं योरमिस्त्रवन्तु नः।<sup>[9]</sup>

इसी अमृतोपम जल से वनस्पतियां, औषधियां पैदा होती हैं। हरे-भरे वनों की हरीतिमा से प्रकृति का वातावरण शीतल सुखद होता है। वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को ग्रहण कर वन ऑक्सीजन छोड़ते हैं जो व्यक्तियों के लिए प्राणवायु है। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में स्थान स्थान पर वनस्पतियों के, औषधियों के गुण गाए गए हैं। औषधियां विश्व का माता के समान भरण पोषण करती हैं और उसकी रक्षा करती हैं-

ओषधिरिति मातास्तद् वो देवीरुप ब्रूवे <sup>[10]</sup> (ऋ.10.97.4)

यजुर्वेद में वृक्षों को दुष्प्रभावों का शमन करने वाला कहा गया है-

वनस्पतिः शमिता।<sup>[11]</sup> (यजु.21.35)

ऋग्वेद के अरण्यानी सूक्त में तो वनों की महिमा बताई गई है-

न वा अरण्यानीर्हनत्यन्यश्चेन्नामि गच्छति  
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकालं निपद्यते ॥ <sup>[12]</sup>

इस प्रकार से वैदिक साहित्य में पर्यावरण को सुखद और शांतिपूर्ण बनाने के लिए हर दिशा में प्रयत्न किए गए हैं तथा सब ओर शांति बनी रहे, इसके लिए प्रार्थना भी की गई है-

ॐ द्यौः शांतिरंतरिक्षम् शांतिः पृथिवीशांतिरापः  
शांतिरोषधयः शांतिर्वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिर्ब्रह्म  
शांतिः सर्वं शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि। <sup>[13]</sup>  
(यजुर्वेद 36.51)

जनसंख्या भी सीमित रहे इस विषय में भी मानव को चेतावनी दी गई है-

“बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश” अर्थात् बहुत संतान वाला दुख पाता है।

बाहरी पर्यावरण के साथ-साथ आंतरिक जगत को भी निर्मल बनाने की प्रार्थना वैदिक साहित्य में की गई है। यदि

व्यक्ति का मन अशांत है, घृणा, द्वेष आदि दुर्भावनाओं से युक्त हैं तो उसका प्रभाव बाह्य परिवेश पर भी पड़ता है, इसलिए वैदिक ऋषियों ने प्रार्थना की है-

“तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।<sup>[14]</sup>”

सूत्र-साहित्य भी पर्यावरण रक्षण संबंधी सामग्री से पूर्ण है। गृह्यसूत्र जहां व्यक्ति के लिए अग्निहोत्र आदि कर्मों का विधान करते हैं, वहां धर्मसूत्र व्यक्ति के जीवन को 16 संस्कारों तथा चतुर्विध आश्रम-व्यवस्था में आबद्ध करते हैं। वैदिक साहित्य के पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि रामायण और महाभारत में भी प्रकृति के साथ मानव के घनिष्ठ संबंध को दर्शाया गया है। अग्नि पुराण में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति अपने वंश, धन और सुख में वृद्धि की कामना करता है तो वह फल-फूल वाले किसी वृक्ष को न काटे। पद्म पुराण के अनुसार दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, 10 बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, 10 तालाब के बराबर एक पुत्र और 10 पुत्रों के बराबर एक वृक्ष हैं-

दश कुप सम वापी, दश वापी समो हृदः

दशहृदःसम पुत्रो, दशपुत्र समो ह्रुमः।<sup>[15]</sup> (पद्मपुराण 1.44.455)

संस्कृत के परवर्ती युग में भी कवि प्रकृति के उपासक रहे हैं। मानव प्रकृति के भावों को समझने और परखने में वे जितने सिद्धहस्त हैं, उतने ही बाह्यप्रकृति के रहस्यों को परखने तथा उद्घाटन करने में समर्थ हैं। प्रकृति संस्कृत काव्यों में उभय रूप से चित्रित की गई है-आलंबन रूप में तथा उद्दीपन रूप में। आलंबन रूप वाले वर्णनों में प्रकृति ही स्वयं वर्ण्य रहती है तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव प्रकृति के ऊपर उत्पन्न प्रभाव का वर्णन होता है। भास का स्वप्रवासवदत्तम हो या कालिदास का अभिज्ञान शाकुंतलम्; सर्वत्र प्रकृति का एक तरफ मनोहारी चित्रण है तो दूसरी तरफ मानव और प्रकृति के घनिष्ठ संबंध को अत्यंत संवेदनशील ढंग से चित्रित किया गया है। तभी तो कालिदास की शकुंतला वृक्षों को जल पिलाए बिना स्वयं जल ग्रहण नहीं करती और अलंकारप्रिया होने पर भी फूलों को नहीं तोड़ती। पहले पहल फूलों के खिलने पर वह उत्सव मनाती है-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपितेषु या  
नादत्ते प्रियमंडनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्  
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्य भवत्युत्सवः<sup>[16]</sup>  
(अभिज्ञान शाकुंतलम् 4.11)

यही कारण है कि शकुंतला के पतिगृह जाने के अवसर पर हरिण अपने मुंह से कुश का ग्रास उगल रही है, मयूरी ने नाचना छोड़ दिया है और लताएं पीले पीले पत्ते गिराकर मानो आंसू बहा रही हैं-

उद्धीर्णदर्भकवला मृगी परित्यक्तनर्तनामयूरी  
अपश्रितापांडुपत्रं मुंचती अश्रुणीव लताः।<sup>[17]</sup> (अभि.4.14)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रकृति भी मनुष्य के सुख दुख में उसके साथ हंसती और रोती है। प्रकृति और मानव के इन घनिष्ठ संबंधों को आज के युग में फिर से सजाने संवारने की आवश्यकता है। जैसे “धर्मो रक्षति रक्षितः” अर्थात् धर्म की रक्षा करने पर धर्म हमारी रक्षा करता है, वैसे ही पर्यावरण की यदि हम रक्षा करेंगे तो पर्यावरण हमारी रक्षा करेगा।

### संदर्भ

1. यजुर्वेद 26.15
2. अथर्ववेद 12.1.12
3. अथर्ववेद 2.28.4
4. ऋ.1.191.82
5. ऋ.1.1.6
6. तैष्सा.26.7
7. अथर्व.1.4.4
8. अथर्ववेद 111.7.5
9. यजुर्वेद अध्याय 16 / मंत्र 12
10. ऋ.10.97.4
11. यजु.21.35
12. ऋग्वेद अरण्यानी सूक्त
13. यजुर्वेद 36.51
14. शुक्लयजुर्वेद 34/1
15. पद्मपुराण 1.44.455
16. अभिज्ञानशाकुंतलम् 4.11
17. अभिज्ञानशाकुंतलम् 4.14